भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-9, अंक-1-4	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी	वार्षिक चन्दा-10.00
शुक्रवार, 11 अप्रे.' 86	मानद सहसम्पादक: डॉ. महेन्द्र दवे-श्री विमल दवे	प्रति अंक : 1.00

गुणातीतसमाज बना कर पाया सबसे मान,
इस धरती पे कोई न जन्मा ऐसा सन्त महान।

प.पू. काकाजी की स्मृति होते ही आँखें आँसू से छलक जाती है, हृदय पर खरोंचे पड़ जाती है.....

स्वधामगमन—

7 मार्च, शुक्रवार की सुबह 9-20 पर प्रेम व करुणा के मूर्तस्वरूप प.पू. काकाजी महाराज ने स्वतन्त्र रूप से एकाएक अपनी जीवन लीला समाप्त की....ने ऐसी कोई बीमारी थी, न कोई अंदेशा, न हमारे मन की तैयारी भी....हाँ, पिछले चार-पाँच वर्ष से उन्हें डायबीटिस जरूर थी। एक दो बार हृदय की तकलीफ भी हो चुकी थी। पर उन्होंने हमेशा इन चीजों की उपेक्षा ही किया करी और....दिन हो या रात—केवल भक्तों की सेवा, उन्हें मार्गदर्शन देने निरन्तर भगवत्कथावार्ता, उन्हें बल देने के लिये लगातार धुन-भजन में लगे रहते थे। आखिर पाँच छः महीने से डायबिटिस बढ़ती ही गई....तो उन्हें इन्स्युलीन के इंजेक्शन देने शुरू किये थे।

27 फरवरी को तो महाराष्ट्र के अकोला प्रदेश में अल्प संबंध में आये भक्तों को आनन्द कराने प.पू. काकाजी गये थे.....वहाँ पर ही कोई मामूली परेशानी होने पर ली गई दर्द की गोली के Reaction आने पर एलर्जी सी हो गई और शरीर पर सूजन सी आ गई....3 मार्च को बम्बई वापस आ गये। यहाँ डॉ. को दिखाया....दवाई लेने से थोड़े स्वस्थ भी हुए, पर आराम किये बिना ही योगीजी महाराज के बनाए सभी संतों की 7 और 8 मार्च को माथेरान शिविर करने के आयोजन में लग गये। उन सभी संतों को ताड़देव बुला भी लिया था....सो इन हरेक से अलग-अलग मिलकर बातें भी कर लीं...4 मार्च रात से दस्त चालूं हुए थे और छः मार्च से फिर उल्टियाँ....खूब उल्टियाँ हुई....अखिर छः मार्च की सायं सेवकों और डाक्टरों ने

अस्पताल चलने के लिए खूब विनती करी....परंतु माने ही नहीं...'मुझे माथेरान जाना है....योगीजी महाराज का ऋण चुकाने उनके संतों का मार्गदर्शन देना है....'। आखिरकार सायं पाँच बजे डा. जे.सी. पटेल आये....दस्त और उल्टियाँ बन्द करने की दवा दी....परन्तु दवा से कुछ फर्क नहीं पड़ा....रात को 12.00 बजे खूब कहने पर भाटिया अस्पताल जाने को तैयार हुए...वहाँ उन्हें दाखिल कराया। चेक अप करने पर पता चला कि डायबीटिस खूब बढ़ गई थी और शरीर में से पानी सूख गया था। सेलाईन और इन्स्युलीन की bottles चढ़ाई.....धीरे-धीरे वे स्वस्थ होने लगे...

7 मार्च की सुबह तो बोलो कि 'मैं अब एकदम fresh हूँ, माथेरान जा पायेंगे...।' पर करीब साढ़े आठ बजे B.P. घटने लगा–कार्डियोग्राम निकालने पर Heart attack नजर आया.... Heart Block हो गया था। B.P. घटता ही रहा....डाक्टरों ने खूब परिश्रम किया– B.P. बढ़ा ही नहीं....सारे साधन निष्फल करे और 9-2 पर वे अंतर्धान हो गये....!

तीर्थस्थान रूप बनी यह वही भाटिया अस्पताल है जहाँ पन्द्रह साल पहले गुरुवर्य योगीजी महाराज ने अपना पञ्चभूत का शरीर छोड़ दिया था। ठीक उसी कमरे के नीचे प.पू. काकाजी ने अपना शरीर छोड़ा.. ! कैसा स्वामीसेवक भाव !

अश्रु के अर्घ्य—

यह अत्यंत दुःखद समाचार करीब पौने दस बजे दिल्ली पहुँचा.....सब एकदम स्तब्ध रह गये...किसी को स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि कभी यह सुनने को मिलेगा–'काकाजी गये।' सब मूक दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखने लगे कि–'क्या यह सच है?' वाणी विचार तो मौन हो गये, आँखों से अविरत अश्रुधारा बहती ही रही...हृदय यह हकीकत मानने को तैयार ही नहीं हुआ और आज भी हृदय की धड़कन तो चल रही है–पर असह्य पीड़ा भुगत कर ही। क्या प.पू काकाजी की सदा हँसती मूर्ति जो कि हरेक को समाधान देती थी वह कैवल्यमूर्ति आखिर तक भूलभलैया में सबको झुलाती रही...! मन, बुद्धि, चित्त हृदय अनियंत्रित होकर सब कुछ भूल कर इनकी स्मृतियों के भंडार में खो गये–'काकाजी ऐसे बोलते थे–यूँ कहते थे–मुझसे यह बात करी थी–यूँ बैठते थे.....'

और...टेलीग्राम द्वारा पंजाब में सभी को यह खबर देकर प.भ. सकलानी साहब के सहयोग से दिल्ली की सारी मंडली अपने प्राण प्यारे प्रीतम के अंतिम दर्शन के लिए सायं ही 'राजधानी' से बम्बई के लिए रवाना हो गई....सभी के मुख पर दुःख की कालिमा छा गई थी....कौन किसे समझाये? हरेक व्यथित होकर, रोकर मानो अपने को समझाने की कोशिश कर रहा था 'काकाजी नहीं जा सकते, काकाजी नहीं जा सकते....'

16 मार्च को प.पू. काकाजी का दिल्ली में स्वागत करने हेतु बहनों द्वारा बनाया तिलों का हार बहनों ने अब अपने प्राणेश को अलविदा देने साथ में ले लिया था....तिल के हाथ को देख-देख कर और अधिक रोना आ रहा था। क्या सोचकर बनाया था? और क्या हो गया? रतलाम पर स्टेशन मास्टर ने संदेशा दिया

कि–'आप सभी को बड़ौदा उतर जाना है; जो अंतिमविधि में आप शामिल होने जा रहे हो वह विधानगर में होगी।' सुबह करीब साढ़े पांच बजे सभी बड़ौदा स्टेशन पर ही खड़े थे। प.पू. स्वामिजी को देखकर एक बार फिर सभी के सब्र का बांध टूट गया और सभी खूब रोये.....प.पू. स्वामिजी ने सभी को खूब हौंसला दिया....सोखड़ा ले गये.....और सायं विधानगर ब्रह्मज्योति पर....

गुणातीतसमाज के सूत्रधार पू. कान्तिकाका के सुपुत्र प.पू. काकाजी के मानसपुत्र पू. घनश्याम भाई और बम्बई के व्रतधारी युवक पू. भरतभाई मेहता ने प्रत्यक्ष गुणातीतस्वरूपों और सारे गुणातीतसामाज के सान्निध्य में 'काका हे ! अमर रहो।' के उद्घोष के साथ चिता को अग्नि दी....और–प.पू. काकाजी का पार्थिव–फिर भी दिव्य देह देखते ही देखते पञ्चभूत में विलीन हो गया...सभी ने नतमस्तक होकर अश्रुपूर्ण नयनों से–'स्व' की आहुति का संकल्प किया !

हम और पू. काकाजी—

आश्चर्य यह है कि–विधानगर में प.पू. पप्पाजी द्वारा रचाई 'ब्रह्मज्योति' में प्रथम समाधि प.पू. काकाजी की हुई ! जिस-जिसने प.पू. काकाजी की देह को कुरसी मे या पालकी में समाधिस्थ रूप में देखा है इन सबकी यह अनुभूति है कि अब भी उनकी देह वैसी ही दीप्तिमान थी। मुखारविन्द पर वही सहज सरल स्मित....दिव्य तेजोमय कपोल....नम्र आँखें....हाँ, जो आँखें हमारी ओर पलकें झपकाती थी–कभी-कभार आँख मिचौली करती थीं और कुछ इशारा कर जाती थी–कह जाती थीं, वे बन्द निश्चित थीं, पर ये बन्द आँखें अब भी बोल रही थीं। खुले नयन के स्पर्श अमृतमय थे, बन्द नयनों के स्पर्श अधिक अमृतमय थे ! भक्तवत्सला और करुणा उनके समग्र तंत्र से टपक रही थी। लगता था–अब ही बोलेंगे आओ, आओ–जय स्वामिनारायण!' सारे चेहरे पर एक अनोखी आभा विधमान थी। क्या यह वही दिव्य विग्रह जिसने प्रभु का निमित्त बनकर कईयों को प्रभुसन्मुख किया.....प्रत्यक्ष प्रभु की निष्ठा में अविचल रखा ! क्या यह वही देह....जिस मूर्ति में अनेक चैतन्यों खीचें गये और जिसने मूर्तिमंत ब्राह्मीशक्ति का परिचय दिया....!

प.पू. काकाजी जैसी दिव्य विभूति के बारे में कुछ लिखने अब भी लेखनी असमर्थ है.....छोटा हो या बड़ा, आबाल हो या वृद्ध, हरेक के दिल पर अपनी प्रभुता से, सरलता से, निर्मानी व स्वरहित जीवन से उन्होंने अपना अधिकार कर लिया था। गरिमामय और शक्तिशाली व्यक्तित्व होने के बावजूद असाधारण और महिमामय जीवन था उनका। उनसे तुलना कर पाये ऐसा अन्य जीवन निगाहों में नहीं आता। एक अनोखी अद्वितीय शक्ति थे वे। उनका हर निर्णय साहस से भरपूर होता था। किसी के अन्तःकरण के भीतर तक पहुँच कर, उसके दर्द को पहचान कर बाहर निकाल लाने की तथा उसका उपचार करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी। हर समस्या के समाधान में उनकी उदारता हमेशा निखर आती थी। संबंध में आये हुए प्रत्येक के साथ के संबंध को उन्होंने वास्तविकता की भावना प्रदान की थी, स्थूल तक यह संबंध मूर्त किया था। उन्होंने सभी को माँ की ममता, पिता का अनुशासन, भाई का सहारा तथा मित्र का सखाभाव दिया। सद्गुरु के स्थान पर रह कर संबंध से आये सभी को मार्गदर्शन दिया।

इनके संबंध में आये तब से हमारे जीवन का कोई भी प्रसंग, चाहे वह दुःख का हो या आनंद का, परिवार की कोई घरेलू समस्या हो या बाहरी व्यवहार की पर प.पू. काकाजी जरूर हाजिर होंगे ही। वास्तविकता तो यह है कि हमने उनसे लगाव नहीं किया था, बल्कि उन्होंने चैतन्य माँ बनकर हमसे प्रेम किया था। उनकी वात्सल्यता ने जीवन को पोसा है, उनकी करुणा ने जीवन को सुखी करा है, उनकी प्रार्थना ने–उनकी धुन्य के अनाहत नाद ने जीव को शाँति दी है और उनकी प्रसन्नता ने जीवन को धन्य बनाया है। **प्रत्येक को अलग-अलग रूप से लगता था कि सर्वप्रथम प.पू. काकाजी मेरे ही हैं। यह भावना भी मिथ्याभ्रम या आत्मवञ्चना नहीं थी, सच्ची अनुभूति थी, क्योंकि जिस परम दिव्यचेतना का वे मूर्तस्वरूप थे उसका साहजिक क्रियाप्रेरक नियम है–'प्रेम'–दिव्यप्रेम** ! अतः उनके प्रेम में दिव्यता थी, विशालता थी, सच्चाई थी, कल्याणप्रदता थी, आनंदप्रदता थी....ऐसा था परम सुहृद् का परम प्रेम ! हमारा रोम-रोम उस परम हितकारी चेतना का ऋणी रहेगा।

आँखों से उनकी अंतिम संस्कार विधि देखने के बाद भीमन यह हकीकत मानने को तैयार नहीं हुआ कि जिनके सहारे जीवन की नाव को तैरती छोड़ दी थी वह ही अलमस्त मूर्ति क्या एक ही पलक में–इतनी जल्दी अपने बीच में से हमें रोते हुए–स्मृतियों के पालने में झूलते छोड़ कर चली जायेगी! कैसे माना भी जाये? भक्तों की आँखें तो अभी भी उस आनन्दकारी मूर्ति को ढूंढती अपने ही हृदय से पूछ रही है, 'कहाँ गयी वह सुख और करुणा की तेजराशि? क्यों चले गए इस तरह छोड़कर? कितने निभाये हमारे जड़ प्रकृति और स्वभाव को? उनके बिना कौन लाड़ लड़ायेगा? कौन धब्बा मारेगा? कौन हमारे लाख बार रूठने पर भी अपने हृदय से माँ की तरह लगा कर रखेगा? पर अब इन प्रश्नों का उत्तर कहाँ? प्रभु आप कहाँ चले गये? और....वहाँ भीतर से एक आवाज आती है–'वह कहीं नहीं गये, यहाँ ही दिव्यतत्त्व में हमारे बीच विराजमान हैं–और रहेंगे।' स्थूल देह छोड़ कर दिव्यतत्त्व के रूप में वे भक्तों के हृदय में समा गये हैं। पर तब भी हृदय को एक ठेस लगी ही है–'मैंने जो चाहा–जो भी सोचा–जो भी माँगा–जिस बारे थोड़ा भी संकल्प किया–वह सब कुछ उन्होंने दिया....पर इन्हें समझते हुए भी कि मुझसे क्या कराना चाहते थे, मैं इनकी मूर्ति के आकार क्यों नहीं हुआ? मैं बाजी हार गया। क्या करना था और क्या करा मैंने? **मानव रूप में विचरती उस प्रभु की मूर्ति में खो जाना था और मै अपने मन स्वभाव में, मनमाने क्रियायोगों में खोकर आनन्द लेता रहा...।' अपनी मन-बुद्धि की मान्यता से उस परमयोगी को हम नापते ही रहे। सतर्क रहकर दिल की सच्चाई से 'स्व' का समर्पण नहीं करा। और वह हमारा सब तंत्र जानते हुए भी निश्चल झरने की तरह अपना प्रेम आशीर्वाद लुटाते ही रहे....लुटाते ही रहे...।**

गुरुभक्ति का अद्‌भुत आदर्श—

ब्रह्मस्वरूप स्वामिश्री शस्त्रीजी महाराज के योग में आकर उन्हें प्रभु का स्वरूप मान लेने के बाद का और तत्पश्चात् गुरुवर्य योगीजी महाराज में उसी परमतत्व की अनुभूति के बाद का **प.पू. काकाजी का समग्र जीवन अर्थात्–'गुरुवाक्य !' गुरुभक्ति का वे बेनमून मूर्तस्वरूप थे।** उनके जीवन की एक भी पल शास्त्रीजी महाराज एवं योगीजी महाराज के अनुसंधान रहित–इन्हीं के गुणानुवाद गाये बिना की–इनकी ही भक्तिविहीन किसी ने नहीं देखी होगी। अंतिम समय अस्पताल में तंद्रावस्था में ही यही रट थी–'शास्त्री

महाराज, योगी महाराज कैसे? हमारे लिये उन्होंने कितना करा? कितना सहन करा?' हमने उन्हें कितना पहचाना?' **इतनी बीमारी में भी–'मुझे योगीजी महाराज का ऋण अदा करना है।** मुझे माथेरान संतों की शिविर करनी है....' स्वयं सम्राट होते हुए भी कैसा स्वामीसेवक भाव? सारे गुणातीत समाज के वे सुहृद् बने, किसी से कोई अपेक्षा नहीं.... अन्त तक विरल योगी की तरह अनुपम साधना...हरेक के आत्मीय स्वजन, हरेक के दास...**गुरुदेव योगीजी महाराज के लिए ही जाने उन्होंने फकीरी ग्रहण करी थी.....शाही फकीर ही थे वे !** दिन या रात को देखे बिना, देह की परवाह किये बिना अनहद् परिश्रम किया।

1969 की नवम्बर में जब ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज ने गोंडल में लगातार दस दिन तक दिल्ली में मन्दिर बनाने की रट लगाई (योगीचरितम् पानः 172-173)–तब उनसे स्थूलरूप से संबंध न होने पर भी प.पू. काकाजी ने योगीजी महाराज के उस संकल्प को उठा लिया....अपने गुरु का वचन नीचे नहीं गिरने दिया और कर्तव्य में परिणत करने की अनहद् चेष्टा की। उस समय दिल्ली में सत्संगप्रचार के लिये कोई base भी नहीं था, 'स्वामिनारायण धर्म' को कोई जानता भी नहीं था....सानुकूलता भी नहीं थीं...संतों की बात सुनने तक कोई आने वाला भी नहीं था। इन विपरीत संजोगों को देखे-अनदेखे करके प.पू. काकाजी ने संतोंको दिल्ली भेज दिया और कहा–'यह तुम्हें मैं नहीं भेज रहा, बापा का संकल्प है और वह हमें झेलना है।'

इस कार्यान्वयन के लिए प.पू. काकाजी स्वयं बार-बार दिल्ली आये और कई बार तो सबकी इच्छाविरुद्ध जाकर भी उन्होंने संतों को दिल्ली भेजने का कार्यक्रम जारी रखा ! अकेले हाथ लड़े...संतों को भी कई बार लगता था कि यहाँ सत्संग का विकास तो हो नहीं रहा, तो क्यों दिल्ली आना? किन्तु पू. काकाजी तो दृढ़प्रतिज्ञ थे। इन्होंने संजोगों को कभी नजर में लिया ही नहीं। इनका सूत्र था–Do not consider the facts as they are, go according to your inner conviction. उनकी एक ही लगन थी–गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज और गुरुहरि योगीजी महाराज की योजना में समर्पित हो जाना....कुछ भी ध्यान में नहीं लिया और वे लगे रहे।

हम जानते हैं कि 1970 के बाद प.पू. काकाजी के जीवन का प्रायः दिल्ली और पंजाब के सत्संग विकास में लगा शेष समय विदेशों में सत्संगविकास में लगा। परिणामस्वरूप जो स्वामिनारायण संप्रदाय अपनी ही कुछ संकुचित भावनाओं के कारण भारत में गुजरात तक ही सीमित था उसका प्रचार-प्रसार दिल्ली और पंजाब के अनेक केन्द्रों में अत्यधिक हुआ। इतना ही नहीं, बल्कि संबंध में आये हरेक को अपनी सहजानंदी सहजावस्था का उन्होंने परिचय कराया... अपनी मनोहारी मूर्ति में सभी को खींच लिया और प्रभु के होकर, प्रभु के बल से, प्रभु के आकार से, प्रभु के संबंध से सबसे साथ हिलमिल कर प्रकृतिपुरुष के द्वन्द्वों से परे का एक दिव्यजीवन जीने की सभी को अनोखी सूझ दी... आत्मबुद्धि व प्रीतियुक्त एक नूतन समाज का विसर्जन किया ! जीव को प्रकृति पुरुष से परे करके अखंड सनाथ करनेवाली उनकी गोद कभी कोई भूल सकता है? ऐसी अमर प्राप्ति कराकर इन्होंने हम पर कितना बड़ा उपकार किया है?

देहत्याग एक बलिदान !

उनके पीछे पागल हुआ समाज जब आज सुनता है–'काकाजी अंतर्धान हो गये !' तब हृदय वह स्वीकारने को तैयार ही नहीं होता। काकाजी सचमुच गये? जा सकते हैं काकाजी? कैसे जा सकते हैं वे?

मन-बुद्धि की समझ में नहीं आ सकता। हाँ, इनका स्थूल वियोग हमारे लिये असहनीय है—और वह स्वाभाविक है। लेकिन, हम खूब समझ लें कि—काकाजी के जीवन के बारे में यदि लिखना असंभव है, क्योंकि वह ऊपर-ऊपर का जीवन नहीं था कि हमारी समझ में आ जायें; तो इनका देहत्याग इनके जीवन से भी और गहन है—गूढ़ है। अपनी देह छोड़ने को वे मजबूर नहीं हुए थे। उन्होंने स्वेच्छा से देहत्याग किया है। **हमारे प्रभु ने हमारे लिए, हमारे एकांतिक धर्म की सिद्धि के लिए, हमारी एकता के लिए पूर्ण बलिदान दिया है।** गुरुवर्य योगीजी महाराज के शब्दों में—'एकता ही एकांतिकता है।' हम सभी भावात्मक एकता से जियें इसके लिए प.पू. काकाजी सतत प्रयत्नशील थे। यह देहत्याग भी इस प्रयत्न का ही एक हिस्सा है। कितनी अनुपम प्रीति होगी उनको गुणातीत समाज के प्रति ! उसके लिये उन्होंने अपने आपको विसर्जित कर दिया ! सभी को अंधेरे में ही रखा और उन्होंने अपना कार्य कर लिया ! भावात्मक एकता की ज्योति में सभी को एक साथ धकेल दिया !! सभी भक्तों को नींद में गिरफ्तार कर लिया और बेताज बादशाह ने अपना संकल्प पूरा करा !! प्राण सींचकर गुणातीतबाग बनाया वह इसी का ही तो नाम है। उनकी प्रीति की हम कल्पना भी नहीं कर पायेंगे। तब भी 'गुणातीत ज्योत' पत्रिका ने जैसे कि लिखा है—**'समग्र समाज के वे सौतेले ही रहे और यह भी मूक रहकर उन्होंने सह लिया** !!!'

स्वपुरुषार्थ से प.पू. काकाजी ने बहुत कुछ पाया था। परन्तु भक्तों से अधिक कभी कोई चीज इन्होंने नहीं रखी। जो परम प्राप्ति उन्हें हुई थी वह भी भक्तों-मुक्तों के कल्याण हेतु खूब लुटाई....अत्यधिक प्रवृत्तियाँ कर-कर के अपनी आयु भी कम कर दी ! वे कई बार कहते भी थे—मेरा नाम ही 'दा-दु' है, तो मैं तो देने वाला हूँ। देने में ही आनंद था....और ऐसा दिया कि संसार और सन्यास—भक्तों और संतों सभी का हर्षवर्धित ही हुआ है।

अब भी विद्यमान !

तो, अब अत्यंत विश्वास से एक बात हम स्वीकारें कि हमारे पूर्णयोग की पूर्णाहुति कराने वाले वे हमारे महागुरु तो यहीं इस धरातल पर ही हैं—रहने वाले हैं। पहले थे ऐसे ही जीवंत, जाग्रत, मूर्तिमंत ! हाँ, जिस देह में वह दिखाई पड़ते ये वह अब नहीं है। एक श्रुति है कि—'शरीर गया आत्मा रह गया'—इस श्रुति का अनुसरण यहाँ नहीं लिखा जा रहा है। ऐसे तो कई आत्मायें विद्यमान होंगी। अब भी उनकी प्रसन्नता वैसी ही है, आनंदप्रदता वैसी ही है, उनका सुहृदभाव भी वैसा ही है। इनका उष्मा स्पर्श भी वैसा ही सुलभ है। इनके अंकित मार्ग पर चलने के लिये वे हमें अब भी प्रेरित कर रहे हैं—करते रहेंगे। प.पू. काकाजी को ही कई बार कहते हमने सुना है—

''आप योगीजी महाराज की उपस्थिति मानकर कार्य करते हो? वे अभी इस समय भी यहाँ मौजूद हैं। हम बात कर रहे हैं वह भी वे सुन रहे है। आपको नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु मैं देख सकता हूँ।''

इन्हीं शब्दों के संदर्भ में हम हमारे सभी भावों की छानबीन करें और उसी प्रकाश में हमारे हृदय को स्थिर करें। प.पू. योगीजी महाराज को इन्होंने कभी परोक्ष माना ही नहीं; क्योंकि उनको स्पष्ट अनुभूति थी कि योगीजी महाराज साक्षात् पुरुषोत्तमनारायण के भव्य गुणातीतस्वरूप थे। प.पू. काकाजी ने उन्हें सम्यक् पहचाना था। अतः 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' इस श्रुति वाक्य के अनुसार ब्रह्मभाव को पायी हुई वह

मूर्ति (प.पू. काकाजी महाराज) महाराज की अखंड धारक मूर्ति थी। इस प्रकार हमारे लिए प.पू. ककाजी द्वारा वही योगीजी महाराज प्रगट थे, तो वे कैसे परोक्ष हो सकते हैं?

इसके अतिरिक्त स्वामिनारायण भगवान के गुणातीत को आशीर्वाद है **'युगो युग जियो ऐसे योगी'**। तो यह गुणातीत स्वरूप किस प्रकार अदृश्य हो सकता है? **पुरुषोत्तम नारायण की शक्ति इनके आश्रितों को कैसे निराधार कर सकती है?**

महाराज के जीवन का एक प्रसंग यहाँ स्मृति में आता है। महाराज के बैरागी स्वभाव से उनके घर में सभी परिचित थे। सुवासिनी भाभी को तो महाराज के प्रति असाधारण प्रीति थी। एक बार सुवासिनी भाभी ने उनको कहा ''घनश्याम। आप उदास रहते हो, पर हमें रोते बिलखते, बेसहारा छोड़ कर कहीं चले नहीं जाना।'' घनश्याम ने (स्वामिनारायण भगवान ने) तुरन्त उत्तर दिया था 'भाभी, जिस किसी से भी मेरा संबंध हुआ है उनमें से किसी को भी मैं बेसहारा नहीं छोडूंगा; तो आपको भूलने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता।'

साक्षात् गुणातीत स्वरूप प.पू. काकाजी भगवान स्वामिनारायण के ही अखंड धारक थे न? 'संत वह मेरी मूर्ति है' यह महाराज का कथन था। इसके अनुसार वे महाराज की ही मूर्ति थे। तो वे कभी हमें छोड़ कर जा सकते हैं? वह तो आनंदकारी-हितकारी मूर्ति थे। उन्होंने कभी किसी को उदासीनता में नहीं रहने दिया–न देंगे, कभी किसी का अहित नहीं करेंगे–अहित होने नहीं देंगे। तो खूब विश्वास से मानना है कि **उनका यह देहत्याग भी हमारे हित के लिये–श्रेय के लिये ही होगा। बेशक, ऐसा मानना खूब मुश्किल है, किन्तु यही एक वास्तविकता है।**

ऐसे तो इनका देहत्याग हम सभी को अन्तर से बहुत हिला गया है। इनके साथ जुड़ी स्मृतियाँ हमारे हृदय को भावविह्वल कर जाती है। अरे ! एक बार भी इनके संपर्क में आये हुए का मन और हृदय व्याकुल हो गये हैं। किन्तु हम भूले नहीं कि **उनसे प्रारंभित कार्यों को अधिक संपूर्णता से मददरूप होने के लिये ही प.पू. काकाजी ने अपने शारीरिक जीवन का बलिदान दिया है।** प.पू. काकाजी का यह गुणविशेष था कि प्रत्येक को हर प्रकार से सहायभूत होना। हमने उनके जीवनकाल में यह देखा ही है। तो, शारीरिक भूमिका पर अब जो घटना घटी है उससे उन्होंने कही बातें, उनसे आरंभित कार्यों, उन्होंने दिये आशीवर्चनों में कोई फर्क नहीं पड़ेगा–न पड़ सकता है। उनकी कही हर बात सच है और सच रहेगी। उनके आश्रित चैतन्यों के विकासक्रम को भी तनिक भी अवरुद्ध होने दिये बिना वे अभी भी उनको सक्रिय सहाय देकर पूर्णता पर पहुंचा कर ही रहेंगे। समय के साथ आगामी घटनायें प्रतीति करायेंगी।

इन्होंने देह के अलावा किसी अन्य वस्तु का त्याग नहीं किया है। उन्होंने हमारा त्याग नहीं किया, अपने कार्य का भी त्याग नहीं किया, इस वसुंधरा का भी त्याग नहीं किया है। देह से तो वे कई गुने अधिक थे यह तो उन्होंने खुद हमें कई बार दिखाया भी है। देह में रहकर, देह के आधार से कार्य करने वाली वह सक्रिय परम चेतना उसके पूर्ण संगठित रूप में अभी भी वैसी ही नहीं–उससे कहीं अधिक क्रियमाण है। प.पू. काकाजी अभी भी इस धरती पर ही हैं। पहले थे इससे भी अधिक जीवंत ! अतः प.पू. काकाजी का सान्निध्य हमें अभी भी प्राप्त है। हम जो कुछ कर रहें है वह वे जानते हैं, हमारे सभी कार्यों के वे दृष्टा हैं।

हमारे साथ चिरंजीव हैं। अमर गुणातीत भावना के रूप में अनादि, अखंड और अद्वितीय हैं और रहेंगे। सनातन गुणातीत भावना की यह अस्मिता है। तो प.पू. काकाजी के चरणों में हमारी यही प्रार्थना है कि हम सब चर्मचक्षु से परे के दृष्टिकोण को पाकर आपसे आंतर संबंध दृढ़ करके आपके अद्‌भुत सान्निध्य के योग्य बनें और आज से हमारे भीतर का एक-एक तत्त्व इसी एक संकल्प पर एकाग्र बने कि आपके कार्य को सिद्ध करने के लिये हम अत्यधिक समर्पित होते जायें.....

हे परमयोगी, हे दिव्यजीवन और समाज के विश्वकर्मा आपके द्वारा प्रारंभित विराट कार्य को सिद्ध करने में हमारे देह, प्राण और मन आपकी दिव्य शक्ति के साथ सुसंवादित कर सकें ऐसी शक्ति दो, शक्ति दो। हे परम गुरु ! शक्ति दो।

Statement about Ownership and other particulars about newspaper

'भगवत-कृपा'— 'THE DIVINE GRACE'

(Form IV Rule 8)

1.	Place of Publication	: Yogi Divine Society, A-103, Ashok Vihar, Ph-III, Delhi-110 052
2.	Periodicity of its Publication	: Monthly
3.	Printer's Name	: Sadhu Mukund Jivandas
	Nationality	: Indian
	Address	: Yogi Divine Society, A-103, Ashok Vihar, Ph-III, Delhi-110 052
4.	Publisher's Name, Nationality, Address	: As above
5.	Editor's Name ,Nationality, Address	: As above
6.	Name and Address of individuals who own the newspaper and partners or share holders	: It has no partners, no capital and no share holders.
	Holding more than one percent of the total capital.	: It belongs to YOGI DIVINE SOCIETY, a registerd charitable society-at A-103, Ashok vihar-III, Delhi-52

I, Sadhu Mukundjivandas, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd/- **Sadhu Mukundjivandas**

Date: 5th April, 1986 Signature of Publisher

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	18.4.86	शुक्रवार	रामनौमी, श्री स्वामिनारायण जयंती, व्रत
2.	दि.	21.4.86	सोमवार	कामदा एकादशी, व्रत
3.	दि.	4.5.86	रविवार	प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी की जन्मजयंती

PUBLISHED By SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. India, Tel. 7128838
Printed at R.P.,Printers, Shahdara, Delhi-110 032